अध्याय - ६

मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में राजनीतिक धार्मिक शैक्षिक एवं अन्य समस्याएँ

प्रास्ताविक :

भारत २६ जनवरी १९५० को गणतंत्र हुआ । देश में से अंग्रेजों का शासन गया और नया संविधान अस्तित्व में आया। १९५२ में प्रथम आम चुनाव हुए और कॉग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी। इससे पहले जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार काम कर रही थी। आज तक हमें अच्छे प्रधानमत्रिओं में जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, लालबहादुर शास्त्री जैसे राजनेता पाये। लेकिन धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार ने प्रवेश किया। वे जनसेवकों को चुनाव जीतने का नारा मात्र समझते थे। सत्ता प्राप्ति के लिए वे नागरिकों पर कुंठाराघात करने लगा। कुर्सी की लडाई ने सभी तरह की नैतिकता को भुला दिया। आठवें-नवें दशक में तो भारतीय राजनीति,साम्प्रदायिकता, परिवारवाद, भ्रष्टाचार के चपेट में आ चुकी थी। जिसके कारण समाज में हर तरह असंतोष फैल गया। आज जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्ट राजनीति प्रवेश कर चुकी है। आज खुलेआम सच्चे राजनेताओं का कत्लेआम किया जाता है। सत्ता प्राप्ति के लिए आज के नेता कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। आज दल बदलना

आम बात हो गई है। मन्नू जी ने राजनीति को लेकर एक पूरा उपन्यास लिखा है, जिसका नाम 'महाभोज' है। साथ-साथ कुछ कहानियों में भी राजनीतिक समस्याओं का संकेत किया है। 'महाभोज' उपन्यास पढ़कर तो ऐसा लगता है कि मानो मन्नू भंडारी जी ने कई अरसे तक राजनीति में काम किया हो ऐसा प्रतीत होता है।

राजनीति एक अपराधीकरण का पर्याय हो चुकी है। भ्रष्ट राजनीति में आम आदमी के मौत का कोई मूल्य नहीं रहा। इसका सुंदर उदाहरण मन्नू भंडारी का 'महाभोज' उपन्यास है। इसमें अनेक राजनीतिक समस्याओं का चित्रण मिलता है।

भ्रष्ट राजनीति का चित्रण :

आज राजनीति शब्द सुनते ही हमें ऊब आती है। राजनीति का स्तर इतना नीचे गिर गया है कि यहाँ शब्दों में चित्रित करना असंभव है। उसके लिए जितना भी गंदा बोल सकते हैं, उतना कम है। आज भारतदेश के सज्जन लोग इसमें आना नहीं चाहते। आज ईमानदार लोगों की खुलेआम हत्या की जाती है। मन्नू जी 'महाभोज' में दा साहब के मुंह से कहलवाती है -

"शुक्र है भगवान का कि सब बातें सलट गई। आज कल राजनीति में घटिया तरह की जो घालमेल चलती है, उसे देखकर लगता है कि तुम जैसे संत आदमी को तो संन्यास ले लेना चाहिए। तुम्हारे बस का है यह सब करना ?"[१]

आज राजनीति में बाहुबली, अत्याचारी लोग प्रवेश कर चुके हैं। राजनीति में सज्जन लोग आना नहीं चाहते। अगर आते हैं तो उसमें कूटनीतिज्ञता एवं शोषितखोरों के गुणों के अभाव में ज्यादा समय टिक नहीं पाते। आज के भ्रष्ट नेताओं को 'मैं हार गयी' कहानी में दुराचारी, अशिष्ट, नारकीय कीड़े तक कहती है। क्योंकि उन्होंने जिस नेता की कल्पना की थी वह उसे विपरीत पैदा हुआ- वह कहता है-

"अरे जान। यह क्या तुमने हर समय नेतागीरी का पचड़ा लगा रखा है ?

कहाँ तुम्हारी नेतागीरी और कहाँ छमिया का छमाका, देख लो, तो बस सरूर आ जाए।''[२]

तब लेखका ने कान बंद कर लिए। वह और भी बोला। पर उसने जो आँख मारी, वह दिखाई दी और लेखिका के मुंह से निकल गया कि-

''दुराचारी। अशिष्ट, नारकीय कीड़े।''

राजनीति व भारतीय नारी :

राजनीति में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने काफी समय राज किया,लेकिन इसी प्रकार अन्य नारियों को वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ। 'हार' कहानी की दीपा राजनीतिक वातावरण में पली नारी है। कुछ समय पश्चात् दीपा एक राजनीतिक सदस्या बन जाती है। दीपा ने अपनी इच्छा से विरोधी पार्टी के सदस्य को अपना पति चुना। दीपा और उसका पति शेखर अपने व्यवहारिक जीवन में पार्टी की गुप्त बातें जाहिर नहीं करते थे। आजादी के बाद पहला चुनाव आया। योगानुयोग दोनों पति-पत्नियों को चुनाव में खड़ा होना पड़ा। ज्यों-ज्यों चुनाव नजदीक आने वाला होता है त्यों-त्यों दोनों के दाम्पत्य जीवन में तनाव पैदा होने लगा। दीपा तन-मन-धन से चुनाव प्रक्रिया में जुट गई। दीपा की जीत लगभग निश्चित थी। दीपा का पति खिन्न रहता है। शेखर का मित्र उससे पूछता है तो जवाब देता है -

''सोचता हूँ मैं हार भी गया तो उस लज्जा को सह लूंगा। पुरुष हूँ, और सहने को आदी। पर जीत गया तो दीपा का क्या होगा। वह हार का धक्का बर्दास्त नहीं कर सकेगी और सच पूछो तो इसीलिए चाहता हूँ कि मैं हार जाऊँ।''[३]

ऐसी कही हुई बात दीपा सुन लेती है और अगला दिन चुनाव का दिन था। न जाने उसके मन में क्या हो गया कि वह पुल्लिंग बूथ पर जाकर पति की मतपेटी में अपना स्वयं का मत दे डाला। यह हार दीपा की नहीं,बल्कि राजनीतिक आदर्शों की भीड़ में समूची स्त्री जाति की हार थी। उस हार का प्रमुख कारण भारतीय स्त्री के मानस में गहरे तक पैठ चुके सामंती संस्कार के कारण वह पुरुष

के प्रभाव से पूर्णरूप से मुक्त नहीं हो पा सकती। इसी विवशता के कारण दीपा अपनी हार स्वीकार कर लेती है।

राजनीति अपराधीकरण का पर्याय :

स्वाधीनता के उपरांत हमारे देश में नेताओं और गुण्डाओं के बीच सांठगांठ थी। चुनावों में नेताओं को 'मनीपावर' और 'मसल्स पावर' की आवश्यकता रहती थी। 'मनीपावर' के लिए वे व्यापारियों और उद्योगपतियों पर निर्भर रहते थे और 'मसल्स-पावर' के लिए गुण्डों और माफिया सरगनों का साथ लेते थे, किंतु कालान्तर में यह हुआ कि इन गुण्डों-बदमासों ने देखा कि सत्ता में बड़ी ताकत है, फलतः उन लोगों ने चाहा कि वे खुद सत्ता पर काबिज हो जाएँ। इस तरह राजनीति का अपराधीकरण और भी बढ़ता और गहराता गया।

आज की राजनीति अपराधीकरण का पर्याय है। तत्कालीन परिस्थिति के बीच राजनीति के संदर्भ में आम आदमी की व्यथा से मालुम होता है कि राजनीति कितनी क्रूर होती है। राजनीति और अपराध एक-दूसरे के काफी निकट है। अधिकांश राजनीतिज्ञ अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपराध और अपराधियों का सहारा लेना नहीं चूकते। हम ऐसा कह सकते हैं कि सातवें दशक की शुरुआत से ही राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। वहीं दूसरी ओर अपराध का भी राजनीतिकरण हुआ है। डॉ. गुलाबराय मन्नू के इस उपन्यास के बारे में लिखते हैं-

''भारतीय राजनीति में अपराध के इस नये तत्व के आने से और सत्तारूढ़ दल समेत सभी विरोधी दल मात्र एक 'चुनाव-संयत्र' में तब्दील हो जाने की वजह से जिस प्रकार देश का निर्माण हुआ है उसके बीच आम आदमी की त्रासदी, करुणा, ममता, संघर्ष और पीड़ा की सच्चाई को, एक से अनेक संदर्भों के साथ अभिव्यंजित करने का सशक्त प्रयास 'महाभोज' में लेखिका ने किया है। राजनीतिज्ञों की ऊपरी महानता, औदात्य तथा गंभीरता की आड़ में जो वास्तविक तस्वीर है- वह छोटे से छोटे ब्यौरे के माध्यम से उभारी गई है, ताकि हम इस

मुद्दे पर सोचें कि देश के राजनीतिज्ञों का यह चरित्र कहाँ जाकर विराम लेगा और इस दरमियान देश के आम आदमी की नियति क्या होगी ? जब कि हरिजनों खेत मजदूरों के नाम से जाने जानेवाले आम आदमी पर अत्याचारों के अमानवीकरण के मामले तेजी से निरंतर बढ़ते जा रहे हैं।''[४]

'महाभोज' में बिसू की हत्या आगजनी में मरे हुए लोगों का साथ न देकर सत्तारूढ़ दल ने शोषक अत्याचारियों का खुलेआम पक्ष लिया। दरअसल देश में हरिजन तथा खेत मजदूरों पर अत्याचारों की कहानियों का एक लम्बा इतिहास प्रेमचंद के समय से शुरू है। आज की राजनीति अपराधीकरण, गुण्डाबाजी आदि का पर्याय है। मन्नूजी 'महाभोज' में एक जगह पर लिखती हैं -

''राजनीति गुंडागर्दी के निकट चली गई है। जिस देश में देव तुल्य राजनेताओं की परंपरा रही हो,वहाँ राजनीति का ऐसा पतन। कभी-कभी मन में एकदम वैराग्य जाग जाता है, पर राजनीति में जहाँ तक अपने को धँसा लिया, वहाँ से निकल भी तो नहीं सकते। निकलने का सीधा अर्थ है- हार मान लेना। और जीवन में एक यही तो बात है जिसे वह कभी नहीं मान सकते। पिछले चुनाव में हारकर भी मन में वे उस हार को एक दिन के लिए भी स्वीकार नहीं कर सके। उस हार को जीत में बदलना ही है - जो भी हो--जैसे भी हो। कृतसंकल्प है उसके लिए।''[५]

मन्नू जी ने 'मैं हार गयी' कहानी में भी भ्रष्ट नेताओं की पोल खोली है। मन्नू जी की दृष्टि से नेता कैसा होना चाहिए ? उसका चित्रण करते हुए लिखा-

''तुम नेता होने जा रहे हो या कोई मजाक है ? जानते नहीं, नेता लोग कभी अपने परिवार के बारे में नहीं सोचते, वे देश के, संपूर्ण राष्ट्र के बारे में सोचते हैं। तुम्हें मेरे आदेश के अनुसार चलना होगा। जानते हो, मैं तुम्हारी स्रष्टा हूँ, तुम्हारी विधाता।''[६]

उसकी कहानी का काल्पनिक नेता एक तो गरीबी एवं आदर्शों से जूझते हुए खत्म होता है और दूसरा नेता आज की राजनीति के अपराधीकरण का शिकार हो जाता है।

राजनीति में नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्या :

आज नैतिकता का मूल्य सामाजिक,आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक,शैक्षिक शून्यहीन नजर आता है। दिन-प्रतिदिन सभी क्षेत्रों में नैतिकता का मूल्य घटता जा रहा है। अब राजनीति में नैतिकता की बातें होती हैं तो हामरा मन उसे मानने के लिए तैयार नहीं होता। मन्नू जी ने 'महाभोज' उपन्यास में यह स्पष्ट कर दिया है कि राजनीति में नैतिकता लुप्त होती जा रही है । लेखिका ने इस उपन्यास में गाँव की राजनीति को कितना ओछेपन में राजनीतिज्ञ शहरी नेताओं ने ढाल दिया है,इसके दृश्य लेखिका ने भी व्यक्त किये हैं। गाँव में हरिजनों के झोपड़े जलाना,उनकी हत्याएँ करवाना और पुनः गाँव के लोगों से बड़े-बड़े नेताओं का झूठे प्रेम का शिकार बनना उसका सुंदर यथार्थ चित्रण हुआ है। मनुष्य की नैतिकता का मूल आधार धर्म है और धर्म है मानवता की रक्षा करना। किन्तु मानवता का इन मूल्यों में काफी अंतर आया है। तत्कालीन युग में मानव जिजीविषा को नष्ट करने वाले नेता अधिकारी पुलिस तथा गोरख धंधे करने वाले वेपारी दिन के उजाले में सफेदपोश बनकर प्रतिष्ठित एवं सन्मानीय जीवन व्यतीत करते हैं। जबकि उनका सुविधालोलुप बनकर दूसरों के जीवन को लाश में परिवर्तित करता है जिस पर वे अपनी भ्रष्ट राजनीति द्वारा बड़ी-बड़ी सफाई पेश करता है जिसका सुंदर उदाहरण 'महाभोज' में मन्नूजी ने दिया है -

''बयान लेने का नाटक तो हो ही गया और इस बार बहुत मुश्तैदी से भी हुआ। अब मामला गहरी छानबीन के लिए ऊँचे अफसरों के हाथ में सौंप दिया जायेगा, जो कभी किसी नतीजे पर पहुँचेगे ही नहीं। कम से कम चुनाव तक तो नहीं पहुँचेंगे। आप लोग मरें या जियें, इन्हें तो चुनाव जीतना है- हर हालत में। और चुनाव जीतने के लिए गाँव के धनी किसानों के वोट भी चाहिए और पैसा भी। इसीलिए अभी उनकी हर ज्यादती पर, अन्याय पर पर्दा डाला जाएगा... उन्हें बचाया जाएगा। इसलिए अच्छी तरह जान लीजिए कि इस हत्या के लिए कुछ नहीं होने जा रहा है, कौन करेगा ? पंचायत इनकी... पुलिस इनकी, और

अब तो विश्वास हो गया होगा आपको कि सरकार भी इन्हीं की है। तब कौन लड़ेगा आपकी लड़ाई ?...आपको न्याय दिलानेके लिए कौन आएगा ?''[७]

आगे भी मन्नू जी ने भ्रष्टनेताओं के मूल्यहीनता का चित्रण करते हुए 'महाभोज' में एक जगह पर लिखा है -

''जब से उसने आगजनी की घटना के प्रमाण जुटाये, वह पागलों की तरह पीछे पड़ा हुआ था दिल्ली चलने के लिए। मैं यही कहता था कि अब कुछ नहीं होने का...जब सरकार ही सारी बात को दाव-ढाँक रही है, तो मेरे-तेरे भाग-दौड़ करने से क्या होगा ? जैसी यहाँ की सरकार,वैसी दिल्ली की सरकार हमने तो सबको देख लिया साहब , एक वह शराबी सरकार थी , एक यह पिशाची सरकार...ससुरे सब एक से...।''[८]

राजनीति अमानवीय मूल्यहीन हो गई है। राजनीति मानवता की शत्रु बन गई है। राजनेता चुनाव के समय बड़े-बड़े भाषण करते हैं। 'गरीबी हटाने' का सूत्रोच्चार करते हैं , लेकिन चुनाव जीतने के बाद वे गरीबों को हटाते हैं। वे थोड़ा-सा भी नहीं सोचते कि साधारण आम आदमी अपनी जिन्दगानी कैसे व्यतीत कर रहा है। आधुनिक युग की भ्रष्ट राजनीति ने अपनी जाल में आम आदमी को बुरी तरह जकड़ रखा है। राजनीति का जहर इतना जहरीला होता है कि आम आदमी सह नहीं पाता और जिन्दा रहते हुए भी वह जिन्दा लाश की तरह जीता है।

'मैं हार गयी' कहानी में भी नैतिक मूल्यहीनता का चित्रण किया गया है। राजनीति के भ्रष्ट नेताओं में मूल्यता नाम की चीज लुप्त होती जा रही है।

पुलिस के हथकंडो की समस्या :-

अंग्रेज के समय से भारत की पुलिस व्यवस्था अमानवीय एवं क्रूर रही है। पुलिस कैसे-कैसे पैंतरे रचती है उसका सुंदर चित्रण मुंशी प्रेमचंद जी ने अपने कथा साहित्य में अनेक जगह पर जिक्र किया है। राजनीति के साथ पुलिस व्यवस्था का संबंध माँ-बेटी का है। जिस प्रकार राजनीति क्रूर एवं अमानवीय हो

गई उसी प्रकार पुलिस की बर्बरता, पुलिस का अत्याचार आम जनता पर बढ़ने लगा है ।

''किसी प्रतीकात्मक अर्थ में नहीं, सीधे अभिधा में-पुलिस, जेल, चुनावी-पैंतरेबाजी, उठा-पटक तथा सताये हुए पददलितों को और भी सताया जाने से जो असंतोष गहराता है- गहराता जाता है, उपन्यास का अंतरंग उद्घाटित होता जाता है और उसका संकेन्द्रित होकर एक खास वर्गविशेष को अंकित करना प्रासंगिक हो जाता है ।''[९]

पुलिस और सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञ बिसू की लाश को नोंच-नोंच कर महाभोज करते हैं। इस उपन्यास में पुलिस और राजनीतिज्ञ गीध का प्रतीक हैं। आज मानवता मर चुकी है। आज की घिनौनी राजनीति और पुलिस के हथकंडों के बारे में डॉ. गुलाबराय हाड़े ने ठीक ही लिखा है-

''सन् १९७० के बाद भारतीय राजनीति में 'जनतंत्र' की जनवाद (पापलिज्म) में परिणति कितनी तेजी से हो रही है । 'जनता द्वारा शासन' के स्थान पर 'जनता के नाम पर गुट-विशेष के शासन' की स्थापना कितने बेम-लूम ढंग से होती जा रही है । वैयक्तिक स्वतंत्रता का ह्रास,मौलिक अधिकारों का अवमूल्यन, निष्पक्ष एवं निर्भीक लोकसेवाओं (पुलिस-प्रशासन) और न्यायालयों के स्थान पर राजनीतिक गुटों से प्रतिबद्ध निष्ठावान तथा लोचदार लोक-सेवाओं और न्यायालयों की माँग, स्वतंत्र प्रेस के स्थान पर गुट-समर्थित प्रेस, प्रचार साधनों पर नियंत्रण, प्रशासन महकमों पर बढ़ता हुआ गुट-परस्तों का दबाव आदि तथाकथित जनवादी-प्रवृत्तियों का अंदाजेबयां भी कतई गलत नहीं कहा जा सकता और यही वह बेहतर तथा स्पष्ट संदर्भ नुस्खा है, जो 'महाभोज' को अपने सीमित क्षेत्र (गाँव सरोहा) में भी आज के 'समूचे हिन्दुस्तान की रचना का प्रशंसात्मक संबोधन बहाल करता है ।''[१०]

आजकल किसी का खून होता है तो पुलिस को पहले से ही जानकारी होती है। डकैती होती है या चोरी होती है तो भी पुलिस को मालुम होता है, लेकिन चंद रूपयों के लिए वे अपनी नैतिकता , जमीर को बेच डालते हैं।

हरिजन इकट्ठे होकर जब रिपोर्ट दर्ज कराने आते हैं, तो पुलिस का व्यवहार देखने लायक होता है-

''लोग दौड़े-दौड़े थाने पहुँचे, पर थानेदार साहब उस दिन छुट्टी पर थे और जो दो लोग वहाँ ड्यूटी पर थे, उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर आएंगे और तहकीकात होगी।''[११]

यानि कि आग लगानेवाले और खून करनेवाले लोगों की साँठ-गाँठ थी, इसीलिए पुलिस निष्क्रिय हो गई थी। पुलिस और उनके कारीन्दे राजनीति में अकर्मणीय हो गये। जगह-जगह रिश्वतखोरी, बेईमानी बढ़ती जा रही है। वे लोग अपने सुख के हेतु गरीबों का शोषण कर रहे हैं।

पुलिस का राजनीतिकरण :

जितनी राजनीति भ्रष्ट है उतनी पुलिस भ्रष्ट है। वे दोनों सिक्के के दो पहलू हैं। आज राजनीति ने बड़े-बड़े पुलिस अफसरों को अपने हाथ कर लिया है। और दोनों मिलकर प्रजा का सत्यानाश कर रहा है। नागरिकों की सुरक्षा हेतु कानून बनाया गया है और कानून की सुरक्षा हेतु पुलिस का गठन किया गया है। आज की पुलिस कानून की रक्षक की जगह भक्षक बन चुकी है। पुलिस अत्याचार आज की राजनीति में बढ़ते जा रहे हैं। वे नेताओं के सम्मान के लिए निम्न स्तर के मजदूरों का शोषण कर उसे दोषित ठहराकर सजा दिलवाती है। राजनीति और पुलिस की साँठ-गाँठ का शिकार बना बिसू एक दफा तो वे लोग बिसू की एफ.आई.आर. दर्ज करने के लिए तैयार भी नहीं थे। जैसे 'महाभोज' में मन्नू जी ने प्रारंभ में लिखा -

''दौड़े-दौड़े थाने पहुँचे, पर थानेदार साहब उस दिन छुट्टी पर थे और जो दो लोग वहाँ ड्यूटी पर थे, उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर आएंगे और तहकीकात होगी।''[१२]

हालाँकि मन्नू भंडारी 'महाभोज' के आगे के भाग में दा साहब के माध्यम से अच्छी पुलिस व्यवस्था और अच्छे राजनेताओं की कल्पना की है। दा साहब

कहते हैं -

"कैसी बात करते हो, लखन ? थोड़ी सख्त आवाज में दा साहब ने कहा, 'पुलिसवालों का काम है कि बयानों और प्रमाणों के आधार पर रिपोर्ट करें और ईमानदारी से करें। इसी बात की तनख्वाह दी जाती है उन्हें। ऊपर से आदेश थोपा जाएगा तो न्याय कैसे करेंगे ? इन्हीं स्थितियों के खिलाफ लड़ने के लिए तो इतनी बड़ी क्रांति की हमने ! और तुम...।' फिर एक क्षण रुककर चुभती-सी नजर से उन्होंने लखन को देखा और सख्त आवाज में बोले, 'अपनी आकांक्षाओं को थोड़ी लगाम दो लखन, वरना मेरे साथ चलना मुश्किल होगा।"[१३]

राजनीतिक रूप से यदि सक्रियता रही तो पुलिस प्रशासन भी चुस्त रह सकता है। उच्च अधिकारी यदि किसी कार्य को निष्ठापूर्वक करें तो उनके निम्नस्तर के अन्य अधिकारी भी निष्ठा एवं नैतिकता से कार्य करते। राजनीतिक नेताओं की ईमानदारी पूर्वक निभायेंगे। इसी ओर संकेत करती हुई मन्नू भंडारी लिखती हैं -

"पुलिसवालों की ऐसी चुस्ती गाँव वालोंने पहले कभी नहीं देखी। शायद पिछली घटना का सबक भूले नहीं थे - अभी तक इधर खबर पहुँची और तुरंत थोनेदार साहब अपने कांस्टेबलों को लेकर मौके पर हाजिर। जाने कितने लोगों के बयान हुए। लाश सबसे पहले किसने किस हालत में देखी ? बिसू की पूरी जन्म-पत्री खुली। कब इसने क्या कहा...क्या किया ? इसकी दोस्ती इसकी दुश्मनी... इनके मिलने-जुलने वाले....जिंदगी की पूरी डायरी, जो शायद बिसू कभी नहीं लिखता, पुलिस लिख कर ले गयी।"[१४]

यहाँ मन्नूजी पुलिस के हथकंडों की समस्या को न चित्रित करके अच्छी पुलिस व्यवस्था की कामना करती है। वह आशावादी है।

राजनीति में आमजनता का शोषण :

राजनीति में अमजनता का शोषण अधिक हो रहा है। डॉ. शशी जैकब का कहना है-

"राजनीतिक स्तर पर नैतिकता का किस प्रकार ह्रास हो चला है। लेखिका मन्नू भंडारी के उपर्युक्त उपन्यास में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है गाँव की राजनीति को कितना ओछेपन में राजनीतिज्ञ शहरी नेताओं ने ढाल दिया है। इसके दृश्य लेखिका ने भी व्यक्त किये हैं। गाँव में हरिजनों के झोपड़े जलाना, उनकी हत्या करवाना और फिर पुनः नेताओं की कोरी सहानुभूति जिसमें मगरमच्छ के आनुप्रशासनिक भ्रष्टाचार का भंडा फोड़ किया है। मनुष्य की नैतिकता का मूल आधार धर्म है और धर्म है मानवता की रक्षा करना। किन्तु पग-पग मानवता का ह्रास हो रहा है... वर्तमान युग में मानव की जिजीविषा को नष्ट करनेवाले नेता, अधिकारी पुलिस तथा काले-व्यापार को प्रसार देने वाले व्यापारी दिन के उजाले में सफेदपोश बनकर प्रतिष्ठित एवं सम्मानीय जीवन व्यतीत करते हैं जबकि उनका यथार्थरूप सुविधाभोगी बनकर दूसरों के जीवन को लाश में परिवर्तित करता है जिस पर वे अपनी भ्रष्ट राजनीति द्वारा बड़ी सफाई से पर्दा डाल रखते हैं।"[१५]

आज हर क्षेत्रों में चाहे राजनीति हो, सामाजिक हो या आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र हो, हर जगह पर आम आदमी को दुःख भुगतना पड़ता है। आम आदमी में भी दलित लोगों को तो सभी पार्टियाँ लुभावनी बातें करके उसका शोषण करती हैं। आजकल लोग आमजनता के बीच लड़ाई-झगड़े, मारकाट करवा के बाँट रखते हैं। गरीबों के साथ ऐसा ही होता है-

"दुहाई गरीबों की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बाँटकर रखो...कभी जात की दीवारें खींचकर, तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर। जनता का बँटा बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्रोत है। कुछ गलत कह रहा हूँ मैं?"[१६]

इसलिए 'मन्नूजी' आगे भी गरीबों के शोषण की समस्या पर संकेत करती हुई कहती हैं-

"ठीक है भाई, तुमको चुनाव जीतना है... पर लोगों की शांति और आपसी सदभावना पर तो मत जीतो। होगा क्या, गाँव में पहले ही तनाव है और बढ़ जाएगा। आपस में मारकाट मचेगी। और इस सबका परिणाम ? पिसेगा

बेचारा गरबों का तबका। संपन्न लोग तो जैसे - तैसे बच ही जाते हैं- पैसे के जोर से, ताकत के जोर से। मरता तो गरीब ही है न ? नहीं...नहीं...यह तो गरीबों की कब्र पर अपना महल खड़ा करने की बात हो गई।''[१७]

इस प्रकार राजनीति में आमजनता का शोषण ही होता है।

न्यायिक भ्रष्टाचार की समस्या :

भ्रष्टाचार अनेक जगहों पर हो रहा है। आज राजनीति भ्रष्ट नेताओं से दिशाहीन हो चुकी है। राजनीति खोखली हो चुकी है। अनेक लेखकों ने राजनीतिक समस्याओं को अपने कथा साहित्य में उजागर किया है। मन्नू भंडारी का 'महाभोज' उपन्यास राजनीति को लेकर एक सशक्त उपन्यास लिखा गया है। कानून के रखवाले भ्रष्ट नेताओं की कठपुतली बनकर जी रहे हैं, प्रमोशन पाने के लिए वे लोग कुछ भी करने के लिए तैयार होते हैं। कानून के रखवाले सौदाबाजी, रूपये ऐंठना, रिश्वत लेना और दबाव में आकर गलत निर्णय लेना उनके लिए आम बात हो गई है।

वर्तमान समय में न्याय विभाग की स्थिति सोचनीय है। बुरे कृत्य करने वाले पिशाचों को पहले कठोर दंड का प्रावधान था। परंतु आज की स्थिति ऐसी है कि एक से एक जघन्य अपराध होते हैं, और अपराधी बाइज्जत बरी हो जाता है। आज के वकील भी कानून को पंगु बनाने के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं। आज कानून का किसी को भय नहीं है। आज न्याय प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। 'महाभोज' में एक जगह पर मन्नू भंडारी लिखती हैं-

''इसलिए अभी-अभी उनकी हर ज्यादती पर, हर अन्याय पर परदा डाला जायेगा, उन्हें बचाया जायेगा, इसलिए अच्छी तरह जान लीजिए कि इस हत्या के लिए कुछ नहीं होने जा रहा है। कौन करेगा ? पंचायत इनकी...पुलिस इनकी और अब तो विश्वास हो गया होगा, आपकी सरकार भी इन्हीं की है, तब कौन लड़ेगा आपकी लड़ाई...? आपको न्याय दिलाने के लिए आपका हक दिलाने के लिए कौन आयेगा।''[१८]

आज धनिकवर्ग सबसे संपन्न वर्ग है। गरीबों से न्याय दूर भागता है। कानून भंग करने वाले को जेल में तो बंद कर दिये जाते हैं,लेकिन कुछ दिनों में वह पैसों के बल पर छूट जाते हैं। आज न्याय बिक रहा है। मन्नू भंडारी के 'महाभोज' का 'मुकुल' बाबू कहता है -

"मुझे दा साहब से न्याय माँगना है। बातें और आश्वासन नहीं, नौ-नौ आदिमियों को मारनेवाला मुजरिम चाहिए। बिसू को मारनेवाला हत्यारा चाहिए।"[१९]

इस प्रकार मन्नू जी के कथासाहित्य में न्यायिक भ्रष्टाचार का चित्रण भी मिलता है।

राजनीति में दलितों का शोषण :

राष्ट्रीय आन्दोलन ने दलितों को दूसरी पहचान दी। उनका रूपान्तरण 'अछूत' में से 'हरिजन' में किया। गांधीजी और डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को मुख्य भूमिका में लाए। उनके कारण आज दलित सामाजिक,धार्मिक, आर्थिक स्वावलंबन और राजनीतिक समानता में हिस्सा लने लगे। फिर भी पूर्ण रूप से उनका विकास नहीं हुआ। प्रेमचनद् जी ने भी 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' उपन्यास में विस्तार से चर्चा की थी। लेकिन स्वाधीनता के बाद दलितों का उतना विकास नहीं हुआ। भारतीय समाज में जड़ संस्कार काफी गहरे हैं। 'महाभोज' आपात्काल के बाद लिखा गया उपन्यास है। नयी पीढ़ी ने पहली बार अपने अधिकारों का हनन, तानाशाही का भयानक रूप तथा शासक दल और उसकी नौकरसाही का वास्तविक चेहरा देखा था।

'महाभोज' के दलित और अभावग्रस्त लोग आज भी आतंक के साये में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे मनुष्य नहीं केवल वोटर हैं। उचित रोजगारी की बात तो अलग रही यदि वे बाहुबलियों के कहने से वोट नहीं देते तो उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। उसके घर भी जला दिये जाते हैं। इतना ही नहीं पुलिस भी उसे गवाह न बने और चुपचाप सह ले उसके लिए प्रताड़ित करती

है। पुलिस और राजनेता उसका शोषण करते हैं, उसका यथार्थ चित्रण मन्नू जी ने 'महाभोज' उपन्यास में किया है-

"गाँव की सरहद से जरा हटकर जो हरिजन टोला है, वहाँ कुछ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदिमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपडियाँ राख में बदल चुकी थी और आदमी कबाब में। लोग दौड़े-दौड़े थाने पहुँचे, पर थोनेदार साहब उस दिन छुट्टी पर थे और जो दो लोग वहाँ ड्यूटी पर थे उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थोने दार साहब के आने पर ही मौके पर आयेंगे और तहकीकात होगी। इसके बाद पता नहीं इन गाँववालों को कौन-सा जहरीला साँप सूँघ गया कि सबके मुंह सिल गए। बस सबकी साँसों के साथ निकला हुआ एक गुस्सा, एक नफरत भरा तनाव बनकर हवा में यहाँ से वहाँ तक सनसनाता रहा।"[२०]

बिंदा हरिजनों पर किये गये अत्याचार का सार्वजनिक वक्तव्य देता हुआ कहता है -

"अरे दा साहब, काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ ? हरिजनों को जिन्दा जला दिया गया और आपकी सरकार और पुलिस देखती रही और महीने-भर से खुद तमाशा कर रही है। हुआ आज तक कुछ।"[२१]

जब प्रमाण देने की बात आती है तब बिन्दा स्पष्ट रूप से कह देता है-

"कौन देगा गवाही... मरना है किसी को शिनाख्त करके ? चार दिन यहाँ आकर रह लीजिए... पता चल जायेगा कि कैसा आतंक है।"[२२]

राजनीतिज्ञ या नेताओं को सिर्फ वोट लेने के लिए ही उसके प्रति प्रेम जताते हैं। बाकी दमन और अत्याचार तो होता है। बिसू एक पढ़ा हुआ शिक्षित व्यक्ति था। लेकिन वह खिले फूल उसके पहले कली को मसल दी जाती है। इस प्रकार राजनीति में मात्र दलितों का शोषण ही होता है। और पुलिस भी उसके साथ धोखा करती है। इस गंभीर समस्या को चित्रित करने का साहस मन्नूजी ने 'महाभोज' में दिखाया है।

आज राजनीति के अपराधीकरण पर सभी लोग दुःखी और चिंतित रहते

हैं पर उसका हल खोजने की कोशिश कोई नहीं करता। 'महाभोज' में इसी समस्या का चित्रण करते हुए मन्नू जी ने आगे लिखा है कि बिन्दा, दा साहब को स्पष्ट बताते हैं कि हरिजनों की बस्ती जलाने वालों को बराबर जानते थे। लेकिन यह बात सत्ता के शोषक तक सीमित थी। दा साहब अपनी कूटनीतिज्ञता से पूरी बात को बदल देते हैं। वह बिन्दा से कहते हैं कि क्या प्रमाण है ? लेकिन जब बिन्दा पूरे प्रमाण जुटा लेता है, दिल्ली के सत्ताधीशों से वे सरकार के यह प्रमाण सामने रखना चाहता है तो प्रशासन न्याय को कुएँ में झोंक देता है और बिसेसर की हत्या का झूंठा आरोप लगाकर बिन्दा को ही गिरफ्तार कर लिया जाता है। मानो ऐसा लगता है कि आज की कोई राजनीति की फिल्म का हूबहू चित्र हो।

राजनीति में अनास्था एवं उसकी अर्थहीनता :

आजकल राजनीतिक दाव-पेच में मनुष्य-मनुष्य का विश्वास खो चुका है। चुनावी राजनीति ने तो विश्वास को नष्ट ही कर दिया। चुनाव में बड़े-बड़े वादे किये जाते हैं, लेकिन इसका अमल नहीं होता। 'महाभोज' में मन्नू भंडारी लिखती हैं-

''चुनाव जीतने के लिए सारा जोर लगा दिया है सरकार ने। पर मैं पूछता हूँ कि क्यों ? मैं तो हारा हुआ आदमी हूँ- मुझसे भला कैसा डर ? अरे जनता ने भरोसा करके आपको कुर्सी पर बैठाया है और कुर्सी पर बैठकर आपने जो कुछ किया जनता के हित में ही किया होगा।''[२३]

'मन्नूजी' आगे भी शासन के भ्रष्टाचार एवं नष्ट होती हुई अनास्था की ओर संकेत करती हुई लिखती हैं-

''इस सरकार ने आपकी सुख शांति, उन्नति समृद्धि के लिए बड़े-बड़े आश्वासन दिए... हम आश्वस्त हुए , क्यों ? जनता के कल्याण में ही हमारा सुख है।''[२४]

इस समस्या पर अन्य महिला लेखिकाओं ने भी काफी प्रकाश डाला है। आज़ राजनीतिक शक्तियाँ लोलुपता की ओर बढ़ रही है। डॉ. धर्मवीर भारती

ने भी 'अंधायुग' में प्रकट किया था कि मनुष्य की आस्था खत्म होती जा रही है। वह हीनता की ओर आगे बढ़ रहा है। जैसे -

"युद्धोपरांत,
यह अंधायुग अवतरित हुआ,
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आस्थाएँ
सब विकृत हैं...
शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित।"[२५]

आज राजनीति निराशा, कुंठा और रक्तपात का पर्याय हो चुकी है। आज व्यक्ति एक-दूसरे को सुखी नहीं देख सकता। आज गरीब हीनता का भाव महसूस करता है। 'महाभोज' में अनास्था की ओर संकेत करती हुई मन्नू जी लिखती हैं-

"बापू यों ही इतने बड़े देश को अपने साथ त्याग के रास्ते पर चलाकर नहीं ले गए थे... पहले खुद चले थे उस रास्ते पर। आस्था से ही कही बात और आस्था से किया काम। दूसरे तक न पहुँचे, यह हो ही नहीं सकता। नहीं पहुँचता है तो समझो, कहीं तुम्हारी अपनी आस्था में कमी है।"[२६]

आगे भी दा साहब के मुंह से मन्नूजी कहलवाती है-

"मेरा हारना चाहे अहमियत न रखता हो, सुकुल बाबू का जीतना जरूर अहमियत रखता है।"[२७]

आज राजनीति में अनास्था का स्वर पैदा हो चुका है।

स्वतंत्रता के बाद राजनीति का अर्थ सत्ता की नीति हो गया है। इसी से यह फलित होता है कि आज राजनीति अर्थहीन है। आज कुशल नेताओं का अभाव है, चारों ओर जातिवाद का विषैला जहर फैल चुका है। तत्कालीन राजनीति में सर्वोच्च नेता ही सर्वेसर्वा है। राजनीति अपना सही अर्थ खो चुकी है, आज सत्ता का सीधा संबंध ऐश्वर्य, वैभव से जुड़ गया है। राजनीति की सही अर्थवत्ता के लिए मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' में लिखा है-

"आवेश राजनीति का दुश्मन है। राजनीति में विवेक चाहिए। विवेक और धीरज।"[२८]

आज हरेक राजनीतिक पार्टियाँ लोकतंत्र का दंभ करती है। वे पैसों के बलबूते इधर-उधर दौरा करके झूंठे आश्वासन देकर चुनाव जीतने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए तो मन्नू जी 'महाभोज' में लिखती हैं-

"आज सारे दिन सुकुल बाबू गोटियाँ ही बिठाते रहे। शाम के भाषण में कौन-कौन से मुद्दे उठाने है... कितने वोट खोने हैं और कितने पाने हैं ? अभी तक हरिजनों के बूते पर ही चुनाव जीतते आये थे। पिछली बार इन लोगों ने आंख फेरी तो मुंह की खानी पड़ी।"[२९]

आज खुलेआम जनता को राजनेताओं द्वारा मूरख बनाया जा रहा है। आज जनता का स्वप्न भंग हो चुका है। आज राजनीति खोखली मुंह फाड़े खड़ी है। इसलिए राजनीति राष्ट्र के लिए बाधक है। आज राजनीति अर्थहीन हो चुकी है।

राजनीति में सच्चे ईमानदार नेताओं के अभाव की समस्या :

भारत की राजनीति की यह विडम्बना है कि श्री लाल बहादुर शास्त्री, महात्मा गांधी, श्रीमती इंदिरा गाँधी, नेहरू जी आदि नेताओं के बाद उनके जैसे नेता नहीं मिल पाये। आज तो नेता देश सेवा कम खुद की सेवा ज्यादा करते हैं। ऐशोआराम की जिंदगी जीने के मोह में ये राजनेता जनता का सोचने की अपेक्षा खुद का ही सोचते हैं। आज के नेता तो इतने भ्रष्ट हो गए हैं कि उसका जिक्र किन शब्दों में किया जाय। मन्नू जी ने 'महाभोज' में सुकुल बाबू के माध्यम से यह बात चरितार्थ कर दी कि राजनेता कैसे होते है ? जैसे-

"शहर का दूसरा महत्वपूर्ण कोना सुकुल बाबू का निवास-स्थान। दस वर्ष तक मुख्य मंत्री रहे हैं सुकुल बाबू इस प्रांत के। बिना किसी बाधा व्यवधान के। एकछत्र राज था उनका। कभी सोचा ही नहीं था कि दस वर्ष की लंबी अवधि ने जिस राजन की नींव को एकदम पुख्ता कर दिया था वह एक झटके से

ऐसे उखड़ जायेगा जैसे कोई जड़े ही न हों उसकी।... साँवला रंग, नाटा कद। थोड़ा थुल-थुल शरीर। दा साहब की तरह सौम्य-संयत भी नहीं। सुरा-सुंदरी से किसी तरह का परहेज नहीं, बल्कि कहना चाहिए अनुरागी है दोनों के।... मस्त-फक्कड़ है एकदम। निजी दोस्तों के बीच फूहड़ भाषा का प्रयोग करते हैं धडल्ले से। गाली-गलौज से भी कोई परहेज नहीं। उनका ख्याल है कि वाक्य में गाली का बंद लगा कि बात में धार आई।''[३०]

इस प्रकार राजनीति में आज ईमानदार नेताओं की कमी है। अच्छे ईमानदार लोग तो राजनीति से दूर भागते हैं। इसलिए कितने ही अत्याचारी लोग राजनीति में प्रवेश कर चुके हैं।

धार्मिक समस्याएँ :

हमारा समाज प्रारंभ से ही धार्मिकता से प्रेरित रहा है। धर्म के बिना मनुष्य अधूरा है। 'व्यवहारिक हिन्दी' कोश में लिखा है-

''धर्म नैतिक कर्त्तव्यों और नियमों की वह पद्धति है, जिसके पालन से व्यक्ति लोक और परलोक दोनों में यश और पुण्य का लाभ करता है।''[३१]

परंतु धर्म के संचालक पुरोहितों में स्वार्थ की भावना धीरे-धीरे बढ़ती गई। फलतः धर्म के नाम पर बाह्याडंबर, कर्मकांड, अधंविश्वास आदि समस्याओं का जन्म हुआ। धर्म मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए,समाज को बेहतर समाज बनाने के लिए,अनेक मानवीय समस्याओं के निराकरण के लिए होना चाहिए; किंतु आज के समय की विडम्बना यही है कि इसी 'धर्म' के कारण अनेक समस्याएँ पैदा हो रही हैं। वस्तुतः लोग 'धर्म' और 'छद्म-धर्म' के बीच का अंतर भूलते जा रहे हैं।

धार्मिकता के नाम अधार्मिकता :

आज धर्म के प्रति आस्था के स्थान पर विशुद्ध विवेक का युग है। इसलिए धर्म के नाम पर होने वाले बुरे कृत्य या धार्मिक आस्था के आवरण में पलने वाले

अवैध संबंधों को खुलेआम चुनौती दी जाती है। मन्नू भंडारी ने भी 'ईसा के घर इंसान' नामक कहानी में फादर के डुप्लीकेट चरित्र का और गिरजाघरों में होने वाली चरित्र-परिष्कृति की प्रक्रिया को एवं कामतृप्ति के लिए भोली-भाली युवतियों के शोषण का पर्दाफाश कर दिया जाए। ईसा के घर इंसान बनकर रहना एक चुनौती बन गई। इस कारण एंजिला फादर का विरोध करती है कि गिरिजाघरों में सुन्दर साडियाँ, बहुमूल्य आभूषण, सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्रियों की क्या जरूरत है ? जैसे-

''मैं अपनी जिंदगी को, अपने इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ, आदमी की तरह जिन्दा रहना चाहती हूँ। मैं इस चर्च में घुट-घुटकर नहीं मरूँगी... मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी...।''[३२]

मनुष्य के कार्य में धर्मबाधक होता है। ईश्वर की सेवा करना ही धर्म नहीं है। बल्कि मानवता की सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है। अगर मनुष्य-मनुष्य होता तो बहुत बड़ी बात होती। आज के इस विकासशील युग में ढोंगी साधु संन्यासियों का रूप धारण करके धर्म के नाम पर अनैतिक कृत्य करते हैं। मैं जिस इलाके में रहता हूँ उस ऐरिया में कितने ही शराबी लोग सुबह में उठकर तिलक लगा के निकल पड़ते हैं और शाम को बहुत अच्छी आय (पूंजी) इकट्ठा करके रात को शराब आदि के महफिलें उड़ाते हैं। यही रूप रह गया है वर्तमान ढोंगी साधुओं का। इसीलिए सच्चे साधु यह संन्यासी को देखकर आज व्यक्ति शक की नजरों से देखता है।

आगे भी फादर के अधार्मिक वृत्ति का पर्दाफाश करती हुई एंजिला कहती है-

''मैं फादर को भी दिखा दूँगी कि जिंदगी क्या होती है, यह सब ढोंग है- मैं यहाँ नहीं रहूँगी।''[३३]

धार्मिक अंधविश्वास की समस्या :

अंधविश्वास की समस्या अधिकतर निम्न एवं मध्यम वर्ग में ज्यादा दिखाई देती है। अपने पुरखों द्वारा मिले संस्कारों का असर काफी समय तक छाया रहता है। मन्नू भंडारी की कहानी 'रानी माँ का चबूतरा' उसका श्रेष्ठ उदाहरण है। इस कहानी में समाज के दो वर्ग स्पष्ट हैं। एक तो अंधविश्वास एवं मृत परंपराओं को स्वीकारा जिसका प्रतिनिधित्व बूढ़ी काकी कर रही है। दूसरा वर्ग है इन मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह करने वाला। जिसका प्रतिनिधित्व एक मात्र नारी गुलाबी करती है। मन्नू जी ने काकी के माध्यम से अंधविश्वास का चित्रण करते हुए लिखा है-

''यहीं कोई तीस साल पहले की बात होगी, हमारे नगर सेठ के बेटे पर शीतला माई का कोप हुआ। पानी की तरह पैसा बहाया, पर शीतला माई तो कोई और ही खेल खेलने आई थी। वे इन दवाइयों से क्यों शान्त होती भला ? सब हार गए और शीतला माई बच्चे पर ऐसी जमकर बैठी कि न उसे मरने दें न जीने दें। माँ तो सेवा करते-करते सूखकर काँटा हो गई। न खाने की सुध, न सोने की। भाग से एक साधू द्वार पर आया। रानी माँ की सूरत देखकर ही सारी बात समझ गया। वह कोई ऐसा-वैसा साधू भी नहीं, शीतला माई का भेजा हुआ साधू ही था। बोला, तेरा बच्चा मौत के मुंह में है, पर तेरे प्रताप से ही बचेगा। सात दिन तू अन्न-जल का त्याग कर दे, तेरा बच्चा उठ खड़ा होगा। रानी माँ के प्राण तो पहले ही आँखों में आए थे,उस पर सात दिन अन्न जल का त्याग। सबने बहुत समझाया कि साधू की बातों में मत आओ, पर वह नहीं मानी। सात दिन बाद बच्चा तो उठ खड़ा हुआ, पर रानी माँ जाती रही।''[३४]

आगे भी अंधविश्वास का चित्रण करते हुए मन्नू जी ने काकी के मुंह से कहलवाया-

''नाम मत ले उस चुडैल का मेरे सामने। वह कोई माँ है ? कसाइन है कसाइन। नहीं तो रानी माँ के चबूतरे में तो वह ताकत है कि पत्थर में भी ममता उपज आए। पर वह तो हेकडीवाली ऐसी कि कभी उधर मुंह भी नहीं करती।

भगवान करे उसका सत्यानाश हो जाए। सारी बस्ती पर किसी दिन पाप ला देगी।''[३५]

हालाँकि गुलाबी एवं काका ऐसे पात्र हैं, जो अंध-विश्वास का विरोध करते हैं। हमारे भारत के कई गाँवों में आज भी मध्यकालीन परिवेश छाया हुआ है। आज भी गाँवों में अशिक्षा, बेकारी, भुखमरी, अन्धविश्वास आदि समस्याएँ मुंह फाडे खड़ी हैं। जिस गुलाबी की जीतेजी गाँव की स्त्रियों ने उपेक्षा की थी उसके मरने के बाद सब गुलाबी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। मनुष्य की महत्वता उसके मरने के बाद समझ में आती है। यही प्रणाली सदियों से हिन्दुस्तान में चल रही है। काश ! यह समझदारी पहले से आती तो गुलाबी को जो भुगतना पड़ा वह न भुगतती। मौत की पूजा और जिन्दगी का माखौल जो हमारे चरित्र की पुरानी विशेषता है। इसी बात की पूर्ति करती पंत जी की 'ताज' कविता याद आ रही है जो इस संदर्भ में ठीक बैठती है-

''हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।
संग-सौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर वास विहीन रहे जीवित जन,
मानव, ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ छाया से रति।
प्रेम-अर्चना यही, करे हम मरण को वरण ?
स्थायित कर कंकाल करे जीवन का प्रांगण ?''[३६]

मन्नू जी ने अंधविश्वास की समस्या को चित्रित करके उसका विरोध किया है। 'स्वामी' उपन्यास की शुभा जैसी स्त्रियाँ अंधविश्वास को मानते हैं लेकिन मिनी उसका विरोध करती है। मिनी अपनी देवरानी शुभा के हाथ में बँधे हुए गंडे, ताबीज देखकर पूछती है-

''यह हाथ में तुमने इतना सब क्या बाँध रखा है ?''[३७]

शुभा संकुचाती हुई जवाब देती है-

"माँ ने यह बँधवाये शादी के तीन साल हो गये पर तुम कहो तो बड़े दादा के बस में करने का एक मंत्र माँ से कहकर तुम्हारे लिए भी बनवा दूँ।"[३८]

लेकिन मिनी के माध्यम से लेखिका ने अंधविश्वास का विरोध करवाया है। मिनी की सास भी अंधविश्वासी है वह लड़की के विवाह के बारे में जन्मपत्री पंडित को दिखाती है। पंडित कहता है-

"सात दिन जाप होम, फिर मंत्र बनाकर दूँगा, कन्या के हाथ में बँधवा देना, देखना, तुरन्त योग उपस्थित होगा।"[३९]

संयोगवश उन्हीं दिनों में उसके विवाह के संबंध में गाँव से पत्र आता है। मिनी की सास इसे ताबीजों का चमत्कार समझती है- मिनी से कहती है-

"देख लिया पंडित जी के ताबीज का चमत्कार तुरन्त ही कैसा योग ला खड़ा किया। बड़ा चमत्कार होता है इन ताबीजों में, नहीं तो दुनियाँ क्या पागल है जो इन पंडितों को पूजती है।"[४०]

ईश्वर में आस्था-अनास्था की समस्या :

ईश्वर के प्रति आस्था रखनेवाले काफी लोग भारत में मिल जाएंगे। मानव-जीवन ईश्वर पर आधारित है। इस संसार में ईश्वर ही सबकुछ है। इसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते। हिन्दी उपन्यास एवं कहानियों में आस्था-अनास्था की बातें यत्र-तत्र मिल जाती हैं।

मन्नूजी की 'क्षय' कहानी उसका सुंदर उदाहरण है। इस कहानी की कुंती ईश्वर के प्रति काफी आस्था रखती है। वह जब आर्थिक रूप से तंग आ जाती है तो अपने पापा की मौत के लिए भगवान से मृत्यु का आह्वान करती हुई कहती है -

"हे भगवान! अब तो तू पापा को उठा ले। मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। मैं टूट चुकी हूँ।"[४१]

मन्नू भंडारी का 'ईसा के घर इंसान' कहानी में ईश्वर के प्रति अनास्था का बोध चित्रित होता है। इसमें लेखिका ने एंजिला के माध्यम से ईश्वर और

चर्च के प्रति वितृष्णा का चित्रण किया है। फादर के आत्मशुद्धिकरण के प्रयोग को चुनौती देती हुई एंजिला कहती है-

"मैं अपनी जिंदगी को, अपने इस रूप को चर्च की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ, आदमी की तरह जिन्दा रहना चाहती हूँ। मैं इस चर्च में घुट-घुटकर नहीं मरूँगी... मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी...।"[४२]

'स्वामी' उपन्यास की नायिका मिनी मन्नू जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। मिनी मूर्तिपूजा एवं पूजा-अर्चना में विश्वास नहीं करती, लेकिन उसकी माँ और सास आस्थावान है। जब मिनी की सास उसे कहती है मैंने तुम्हें कभी ठाकुर जी के सामने हाथ जोड़ते नहीं देखा। तो मिनी उत्तर देती है-

"मैं यह सब वहाँ भी नहीं करती थी, माँ भक्त जरूर है, पूजा पाठ भी करती है पर मामा ने छुआछूत यह ढकोसला एक दिन भी नहीं करने दिया उन्हें।"[४३]

इस प्रकार मन्नू जी ने कथासाहित्य में यत्र-तत्र उपर्युक्त समस्या का चित्रण मिलता है।

शैक्षिक व अन्य समस्याएँ :

सामाजिक,आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं की भाँति शिक्षा जगत में भी धांधली मची हुई है। आज शिक्षा प्रणाली भ्रष्ट हो चुकी है। आज की शिक्षा प्रणाली व्यर्थ साबित हो रही है। आज शिक्षा जगत में हजारों बेरोजगार घूमते हैं। अगर शिक्षा प्रणाली ठी होती तो युवा-पुरुषों को बेकार में नाम दर्ज कराना न पड़ता। मन्नूजी ने कुछ कहानियों में शैक्षिक समस्याओं का चित्रण भी सांकेतिक रूप से किया है। 'रेत की दीवार' कहानी में लेखिका ने बेकार इंजीनियरों का चित्रण किया है। रवि अपने मित्र की कही हुई बात पर सोचता है-

"यार कितना ही पढ़ लो और मगज मार लो। आखिरकार तो बेकार इंजीनियरों की युनियन में ही भरती होना है।"[४४]

आज की गलत शिक्षा प्रणाली के कारण भारत में रोजगार नहीं मिलता, इसीलिए लोगों को रोजगार धंधे के लिए विदेश जाना पड़ता है। उसमें भी भ्रष्ट राजनीति का इसे शिकार होना पड़ता है। रविके मित्र का बचन है-

''यहाँ कोई भविष्य नहीं है इन लोगों का- आजकल सैकड़ों इंजीनियर्स मारे-मारे फिरते हैं... किसी तरह फारेन जाने की तिकड़म भिड़ाओ कनाडा में बहुत लोगों की आवश्यकता है। इंजीनियर्स के लिए जर्मनी में सबसे ज्यादा स्कोप है। एक बार जाने को मिल जाए तो जिन्दगी बन जाए ... पर बच्चू इस सबके लिए पुल और पुश चाहिए। मैरिट को कोई नहीं पूछता। आज दो कौड़ी की भी...।''[४५]

'महाभोज' उपन्यास में भी मन्नूजी शिक्षा के ऊपर जोर देती दिखाईदेती हैं। बिन्दा और बिसेसर दलितों को शिक्षित करने के लिए अनेक प्रयास करते हैं। उनका नारा है 'शिक्षित बनो', स्वाभिमानी बनो, बिना शिक्षा के कोई परिवर्तन संभव नहीं है। बिसेसर जब शहर से शिक्षित होकर गाँव में लौटता है तो दलितों को शिक्षित करने के लिए स्कूल चलाता है, उनके घरों में जाकर स्वयं पढ़ाता है।

जातिवाद की समस्या :

वर्तमान समय में जातिवाद हमारे संपूर्ण समाज को सकंजे में ला रहा है। और इस समस्या को आज के भ्रष्ट नेता प्रोत्साहित करते हैं। आज जातिवाद के कारण कितने ही लोग मौत का शिकार होते हैं। आज तो व्यक्ति जातिगत ही सोचता है यही उसकी मानसिकता हो गई है।

''जातिगत दलबंदी भारत के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। भारतीय समाज को जातिवाद के जहर ने अत्यधिक हानि पहुँचाई है। जातिवाद,साम्प्रदायिकता आदि भारतीय समाज की प्रगति के मार्ग में भी विशाल रोड़े है। इन तत्वों का बहिष्कार जब तक भारतीय जन-जीवन से नहीं होगा, तब तक देश और समाज की प्रगति में प्रश्नचिह्न लगे ही रहेंगे। जातिवाद समाज में अधिक दिनों तक चल

भी नहीं सकता। उसका विनाश निश्चित ही है। 'राही मासूम रजा' का 'आधा गाँव' इस संदर्भ में देखा जा सकता है। साम्प्रदायिक स्थितियों के कारण परिवेश कितना निष्क्रिय होता जाता है।''[४६]

'मन्नूजी' वर्गगत एकता की ओर संकेत करती हुई में 'महाभोज' में लिखती है-

''दुहाई गरीबों की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बाँटकर रखो... कभी जात की दीवारें खींचकर, तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर। जनता का बँटा-बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्रोत है। कुछ गलत कह रहा हूँ?''[४७]

इस प्रकार नेताओं द्वारा जातिगत झगड़ा करके बाँटना आज एक बहुत बड़ी समस्या है।

अखबारों की अश्लीलता और उसके झूठेपन की समस्या :

एक जमाने में अखबारों का बहुत बोलबाला था। अखबार जनता का सच्चा प्रतिनिधि था । इनके द्वारा कोई भी सूचना किसी भी जगह पहुँचाई जाती थी। सच्चाई और सत्यनिष्ठ बातों को उजागर करना उनका कर्त्तव्य था। परंतु भ्रष्ट राजनीति यहाँ भी व्याप्त है। कोई भी अखबार कोई न कोई पार्टी से संबंध रखता ही है। इसी कारण कोई भी पार्टी के विषय में उठाई गई आवाज को पूर्णतः पलटकर उनके फेर-बदलकर झूठी खबरों को फैलाकर जनता के साथ खिलवाड़ करते हैं।

आजकल सच्ची एकनिष्ठ एवं मूल्य-केन्द्रित पत्रकारिता के स्थान पर गंदी पीली-पत्रकारिता (Yellow-Journalism की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मन्नूजी के 'महाभोज' उपन्यास में उपर्युक्त समस्या का चित्रण भी मिलता है, जैसे -

''लेकिन जैसे ही खबर शहर में पहुँची, वहाँ से मंत्रियों, नेताओं और अखबार नवीसों की गाड़ियों का तांता लग गया। आग से उठनेवाले धुएँ के बादल तो एक ही दिन में छंट गये, पर शहरी गाडियों से उठने वाली धूल के

बादल कई दिन तक मंडराते रहे। नेताओं ने गीली आँखें और रुंधे हुए गले से क्षोभ प्रकट किया और बड़े-बड़े आश्वासन दिये। अखबार नवीस आये तो दनादन उस राख के ढेर की ही फोटो खींचकर ले गये। दूसरे दिन में छपकर घर-घर पहुँचा भी दिया, इस घटना का सचित्र व्यौरा। किसी ने सबेरे की खुमारी में अंगडाई लेते हुए, तो किसी ने चाय की चुस्की के साथ पढ़ा, देखा। देखते ही चेहरे पर विषाद की गहरी छाया पुत गयी। चाय का घूंट भी कड़वा हो गया शयाद ढेर सारी सहानुभूति और दुःख में लिपटकर निकला- ओह, हांरिबल.... सिम्पली इन ह्यूमन कब तब यह सब और चलता रहेगा ? त्.. त्...त् । और पन्ना पलट गया। थोड़ी देर बाद गाँव वालों की जिंदगियों की तरह अखबार भी रद्दी के ढेर में जा पड़ा।''[४८]

आगे भी मन्नू भंडारी अखबारों की झूंठेपन का पर्दाफाश करती हुई दा साहब के मुंह से कहलवाया-

''आपका इस तरह टिप्पणी करना भी कोई खास शोभनीय नहीं है। आप लोगों ने जो भूमिका अदा की, उसे किन अक्षरों में लिखेंगे आप ? चापलूसी और जी-हुजूरी की भूमिका तो नहीं है, अखबारनवीसों की !''[४९]

मन्नू भंडारी जी आगे भी अखबारों की अश्लीलता पर पर्दाफाश करती हुई दा साहब के द्वारा यह कहलवाती हैं-

''फिर आपका अखबार तो अश्लीलता के आरोप पर बंद हुआ था। सो भाई... बात अधूरी ही छोड़ दी दा साहब ने।''[५०]

आगे मन्नूजी अखबार की आजादी को केन्द्र में रखकर दा साहब के माध्यम से यह कहलवाना चाहती हैं कि अखबार को ईमानदारी से बातें लिखनी चाहिए। आजकल जिस प्रकार अखबार छपे जा रहे हैं वैसा नहीं होना चाहिए। उसको तो-

''अखबार को तो आजाद रहना ही चाहिए। वे ही तो हमारे कामों का, हमारी बातों का असली दर्पण होते हैं। मेरा तो उसूल कि दर्पण को धुंधला मत होने दो। हाँ अपनी छबि देखने का साहस होना चाहिए। आदमी में बड़ी हिम्मत

और बूता चाहिए उसके लिए। इससे जो कतराता है, वह दूसरे को नहीं, अपने को ही छलता है।''[५१]

मन्नूजी की 'तीसरा-हिस्सा' कहानी भी राजनीति व अखबारवालों की मिलीभगत का चित्रण करते हुए शेरा बाबू के मुख से कहलवाया -

''जनता पार्टी के मंत्रियों की तस्वीरें...उनकी जीवनियाँ...उनके इन्टरव्यूज उनकी प्रशंसा प्रशस्ती... लानत है स्साले इन संपादकों पर। दोगले और बेपेंदी के। अच्छा है बेटा, तुम यही करो। जो शक्ति स्थान पर बैठा है उसके चरण चापो और अपनी सात पुश्तों को तार लेने का सिलसिला बिठा लो। अरे कम से कम कुछ करके चरण थकने तो देते इनके फिर चाँपते। पर इतना सबर किसको ? लेखक, संपादक, अध्यापक,सबके सब चले जा रहे हैं लाइन लगाकर। जय कुर्सी मैया।''[५२]

इस प्रकार मन्नू जी ने आज के अखबारों की पोल खोल दी है।

महानगरीय भीड़-भाड़ एवं ध्वनि-प्रदूषण की समस्या :

आज महानगर का परिवेश शोरगुल भीड़-भाड से भरा हुआ दिखता है। आधुनिक जीवन में बम्बई, दिल्ली, चेन्नई , कलकत्ता, अहमदाबाद जैसे महानगरों में भीड़-भाड़ और शोर-शराबों का आतंक फैल रहा है, जिधर देखो भीड़-भाड़। गाँव में से आने वाला आदमी भी महानगरों में आकर भीड़ का हिस्सा बन जाता है।

मन्नू जी ने 'आपका बंटी' उपन्यास में शो-शराबा भीड़-भाड की समस्या का संकेत दिया है-

''और शाम को बालकनी में बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने दूर-दूर तक फैली हुई कोलतार की सड़क में एक-एक लहराने लगती और उन पर दौड़ती हुई ट्रामें,बसें, दौड़ते-भागते ढेर-ढेर आदमी मछलियों में बदल जाते,पानी को चीरते हुए तीर की तरह इधर से उधर तैरते रहते।''[५३]

मन्नूजी की कहानियों में भी भीड़-भाड एवं शोर-शराबे की समस्या का

चित्रण सांकेतिक रूप से हुआ है। 'यही सच है' कहानी में हावडा पुल के दीर्घ विस्तार में हुगली में विहार करती नौकाओं एवं बड़े-बड़े जहाजों का उल्लेख किया है। हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म एवं उस पर चलती फिरती भीड़-भाड़ पर उस कहानी की नायिका दहशत से आतंकित हो जाती है। जैसे-

''गाड़ी जब हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर प्रवेश करती है तो जाने कैसी विचित्र आशंका, विचित्र भय से मेरा मन भर जाता है...प्लेटफार्म पर खड़े असंख्य नर-नारियों में इरा को ढूँढ़ती हूँ...उस भीड़ को देखकर दहशत जैसे और बढ़ जाती है।''[५४]

महानगर की असंख्य भीड़, बड़ी-बड़ी इमारतें परिवहन के साधन भी व्यक्ति के हृदय को आनंद नहीं देते। उस नायिका को लम्बी-चौड़ी भीड़ बिलकुल महत्वहीन लगती है। उसे महानगरीय परिवेश में स्वयं अपने अस्तित्व को मिटता हुआ महसूसती है। वह कानपुर,पटना जैसे छोटे शहरों को याद करती हुई कलकत्ता महानगर की तुलना करती है। उसके घुंटन का चित्रण करते हुए मन्नूजी ने लिखा है-

''ऊँची-ऊँची इमारतों और चारों ओर के वातावरण से कुछ विचित्र-सी विराटता का आभास होता है और इन सबके बीच जैसे मैं अपने को बड़ा खोया-खोया सा महसूस करती हूँ।''[५५]

प्रदूषित महानगरों की समस्या :

भारत में प्रदूषण की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या की वजह से कितने ही लोग दिन-प्रतिदिन उसका शिकार होते जा रहे हैं, मानव-जीवन पर उसका गहरा असर होता है। उससे कई लोग रोगों के शिकार हो रहे हैं। इस समस्या का यदि समाधान न किया गया तो मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बना रहेगा। खास करके यह समस्या बड़े-बड़े महानगरों में अधिक दिखाई देती है।

मन्नूजी की 'ऐखाने आकाश नाई' कहानी में उपर्युक्त समस्या का चित्रण

किया है। आज महानगरीय जीवन के औद्योगिकीकरण, प्रदूषण, अपौष्टिक खान-पान, अत्यधिक व्यस्त दिनचर्या को लेकर संबंधों में विघटन का प्रत्यक्षीकरण कराया गया है। इस कहानी में भारतीय महानगरों, ग्रामीण परिवेश एवं वहाँ की आधुनिक मानसिकता का सत्यनिष्ठ चित्रण हुआ है। आज के महानगर औद्योगिकीकरण के कारण हजारों टन धुंआँ निकलता है। फलस्वरूप पास-पड़ोस तक कटे हुए और अपौष्टिक एवं अशुद्ध खुराक की वजह से त्रस्त है। इतनी भीड़-भाड़ में उसको थोड़ा-सा भी समय नहीं मिलता। ऐसे में व्यक्ति अपना स्वास्थ्य का ध्यान कैसे रख सकता है। इस प्रकार व्यक्ति भीड़-भाड़ में भी अकेलापन, घुंटन महसूस कर रहा है।

'एखाने आकाश नाई' की लेखा और दिनेश अपने महानगर से ऊब चुके हैं। दिनेश अपनी पत्नी लेखा को दुःखी एवं थकी हुई नजरों पर दया खाकर वह उसे कुछ समय के लिए गाँव की आबोहवा लेने के लिए भेजना चाहता है। दिनेश का कहना है-

''वहाँ की आबोहवा ही ऐसी है कि एक बार मुर्दा भी जाग उठे।''
और शहर की आबोहवा पर अपनी वेदना प्रकट करती है-

''यहाँ की आबोहवा ऐसी है। न खुली न साफ हवा मिलती है। न अच्छा खाने-पीने को।''[५६]

प्रदूषित वातावरण तथा महानगरों की भीड़-भाड़ से मन्नूजी बहुत दुःखी हैं। 'कील और कसक' कहानी में इस समस्या का संकेत करती हुई लिखती है-

''घर के नीचे प्रेस था और ऊपर के तल्ले में मकान मालिक रहते थे। बीच के तल्ले तीन किरायेदार रहते थे। सारा वातावरण काफी घुटा-घुटा था और प्रेस की लगातार धड़-धड़ की आवाज एक अच्छे-भले आदमी के सिर में दर्द पैदा करने के लिए पर्याप्त थी।''[५७]

यहाँ मन्नू जी ने महानगरीय ध्वनि प्रदूषण की समस्या का पर्दाफाश किया है। प्रदूषित वातावरण से मन्नू जी काफी प्रभावित नजर आती हैं।

व्यसन मुक्ति की समस्या :

मन्नू जी ने अपने कथासाहित्य में व्यसन मुक्ति की ओर भी हमारा ध्यान खींचा है। 'नशा' कहाने में उन्होंने व्यसन मुक्ति की ओर संकेत किया है। 'नशा' का शंकर शराबी है, लेकिन उसकी पत्नी उसको शराब पिलाने में मदद करती है। हालाँकि हम ऐसा कह सकते हैं कि शंकर उसका पति है इसलिए उनकी हर इच्छाएँ पूर्ण करने के लिए तैयार रहती है। फिर भी व्यसन ने तो कितने ही घर बरबाद किये हैं। कहानी के आरंभ में ही लेखिका व्यसन की भयानकता की ओर संकेत करती हुई लिखती है -

''सत्यानाश हो उस हरामी-पिल्ले का, जिसने ऐसी जानलेवा चीज बनाई। ...घर का घर तबाह हो जाए, आदमी की जिन्दगी तबाह हो जाए, पर यह जालिम तरस नहीं खाती। कैसा मूर्ख होता है आदमी भी, वह समझता है वह इसे पी रहा है, पर असल में यह आदमी को पीती है आदमी की जान को, आदमी के खून को पीती है...उसके ईमानको पीती है, हाँ, हाँ !''[५८]

व्यसन की समस्या इतनी भयानक है कि उससे कईघर टूटते हैं। यहाँ भी शंकर की पत्नी अपने बेटे किशनू के साथ चली जाती है। वह किसी भी तरह शंकर की मार-पीट से छुटकारा पाना चाहती है। इसलिए अपने बच्चे को वह कहती है -

''मुझे यहाँ से ले चल, किशनू...यहाँ से ले चल। मैं अब एक दिन भी इस घर में रहना नहीं चाहती। मैंने बहुत सहा है, अब और नहीं सहा जाता, मुझे यहाँ से ले चल आज ही।''[५९]

'नशा' में मन्नू जी यह स्पष्ट करती हैं कि आदमी शराब पीता है वह गलत है। शराब ही आदमी को पीती है। इस कहानी में लेखिका व्यसनमुक्ति का संकेत करके उसके हल की ओर भी संकेत किया है। कई समस्याओं का वह समाधान भी करती है। जिस प्रकार मुन्शी प्रेमचन्द समस्याओं का चित्रण करके बाद में, उसका यथार्थ रूप से हल भी बताते थे। कुछ इस प्रकार का प्रयास मन्नू जी ने कुछेक कहानियों में किया है।

सांस्कृतिक मूल्यों के गिरावट की समस्या :

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भारतीय संस्कृति के चार आधार स्तंभ हैं। आज भौतिकवादी संस्कृति के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। सामाजिक जागरण के कारण संस्कृति में भी परिवर्तन आया है। क्योंकि संस्कृति समाज सापेक्ष है।

''समाज के बिना संस्कृति जीवित नहीं रह सकती और यही कारण है कि प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है।''[६०]

डॉ. रामगोपाल सिंह के अनुसार-

''हर नये युग में जीवन मूल्य अपना नया संस्कार करते हैं। यही उनका कल्प है,अपने इस नये संस्कार में उनका पुराना रूप नया बनता है। इस रूप में मानव संस्कार पुराने के प्रवाह क्रम का ही अगला विकास होते हैं। जीवन मूल्यों के इस नये संस्कार और कल्प की गति को साहित्यकार उस समय तक अपने साहित्य में मूर्तिमत्ता नहीं दे सकता, जब कि उसे युग की विचारधाराओं, जीवन दर्शन और जीवन के विकास के लक्ष्य और उसकी गति का ज्ञान न हो।''[६१]

औद्योगिक क्रान्ति के कारण वर्तमान समाज में सांस्कृतिक चेतना आयी है उसके साथ-साथ अनेक समस्याएँ भी पैदा हो रही हैं। आज का व्यक्ति परंपरागत रूढ़ मूल्यों से मुक्त होकर देखा कि जीवन इन मूल्यों पर नहीं बल्कि अर्थ पर,विज्ञान पर आधारित है। इसी वजह से पारिवारिक संबंधों में धारणाएँ बदलने लगी। पारंपरिक रूढ़ नैतिकता के प्रति उदासीनता ने सबसे पहले आदरणीय संबंधों को तोड़ा। आज बच्चे अपने माँ-बाप के प्रति संवेदना खो चुके हैं। आज एक ही घर में लोग अजनबी की तरह रह रहे हैं। इस सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास ने महानगर एवं ग्रामीण परिवेश को काफी प्रभावित किया है। मन्नू जी ने इस समस्या का चित्रण उनकी अनेक कहानियों में किया है। उस दृष्टि से 'एखाने आकाश नाई' कहानी पढ़ने लायक है।

'ऐखाने आकाश नाई' की लेखा और दिनेश महानगरीय संस्कृति की

विडम्बना को झेल रहे हैं। लेखा एक जगह पर कहती है -

"यहाँ की आबोहवा ही ऐसी है। न खुली, न साफ हवा मिलती है, न अच्छा खाने-पीने को।"[६२]

सुषमा के इस विचार में भी सांस्कृतिक मूल्यों के टूटन का चित्रण मिलता है। वह कहती है-

"पिछले तीन साल से मैं केवल घरवालों के लिए ही मर-खप रही हूँ। नौकरी के दो-दो ट्यूशन करके मैंने घर का सारा खर्च चलाया।...पर इन लोगों से इतना भी नहीं होता कि मेरी हँसी-खुशी में साथ दें।"[६३]

सांस्कृतिक मूल्यों का परिवर्तन महानगरों तक ही नहीं रुका बल्कि इससे गाँव भी नहीं बच पाये। लेखा गाँव में जाकर ऊब जाती है। वह जल्दी ही उसे छोड़कर वापस शहर में आना चाहती है।

'अकेली' की सोमा बुआ भी इन मूल्यों के टूटने का शिकार होती है। सोमा बुआ के देवर के मरे कुछेक साल हो गये। उसके समधी के घर शादी होती है। वे लोग रूपये-पैसों से धनाढ्य हैं। सुमा बुआ के देवर की ससुराल में शादी-व्याह में जाने के लिए अपनी अँगूठी बेच दी और सिंदूरदानी खरीदी। वह इतनी पुलकित हो गयी -

"श्याम को राधा भाभी ने बुआ को चाँदी की एक सिंदूरदानी, एक साड़ी और एक ब्लाउज का कपड़ा लाकर दे दिया। सबकुछ देख पाकर बुआ बड़ी प्रसन्न हुई और यह सोच-सोचकर कि जब वे ये सब दे देंगी तो उनकी समधिन पुरानी बातों की दुहाई दे देकर उनकी मिलनसारिता की कितनी प्रशंसा करेगी, उनका मन पुलकित होने लगा। अँगूठी बेचने का गम भी जाता रहा। पास वाले बनिए के यहाँ से एक आने का पीला रंग लाकर रात में उन्होंने साडी रंगी। शादी में सफेद साड़ी पहनकर जाना क्या अच्छा लगेगा ? रात में सोई तो मन कल की ओर दौड़ रहा था।"[६४]

वह तैयार होकर पूरे दिन बैठी रही पर समधी के घर से कोई न्योता नहीं आया। महानगरीय जीवन की सभ्यता के बीच एक ओर नयी पीढ़ी सांस्कृतिक

मूल्यों की अवहेलना कर रही है तो दूसरी ओर पुरानी पीढ़ी इन मूल्यों की रक्षा करने के लिए छटपटाती है। 'छत बनाने वाले' के ताऊ जी इन्हीं मूल्यों की रक्षा के लिए पूरे परिवार की बागडोर अपने हाथ में कसे हुए हैं। वे अपने भतीजे शरद को कहते हैं-

''सो भैया,घर है तो ऊँच-नीच तो लगी रहती है। जमाने की हवा है तो बच्चे उससे अछूते थोड़ी ही रहते हैं,पर घर का जमा-जमाया एक सिल-सिला हो तो सब ठीक हो जाता है। बच्चे जब भटकने लगें उस समय भी यदि उन्हें ठीक से गाइड न कर सकें तो लानत है हमारे माँ-बाप होने पर।''[६५]

इस कहानी में नन्हा मुन्नाके कथन के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन का संकेत करती हुई मन्नू जी लिखती हैं-

''धोती की तहमद बाँधे ताऊ जी खड़े-खड़े उसी कमांडरी में आदेश देते जा रहे थे और नन्ना-मुन्ना ईंट के ढेर पर खड़ा होकर चहक रहा था , 'देखो लल्ला भैया, हम कितने ऊँचे पहाड़ पर...'।''[६६]

नन्हा मुन्ना का सीमेंट की बोरियों पर चढ़कर ऐसा बोलने में सांस्कृतिक मूल्यों में आनेवाले परिवर्तन का संकेत है।

'एक कमजोर लड़की की कहानी' की रूप पुराने संस्कार और आधुनिक संस्कार के बीच फँसी हुई नारी है। वह ललित नामक व्यक्ति को चाहने पर भी पिता के कहने पर एक वकील से शादी करती है। विदेश से लौटकर फिर से दूसरी बार जब ललित उसके जीवन में आता है तो वह ललित को कहती है-

''नहीं ललित तुमसे दूर रहकर ही मैं कमजोर रहती हूँ, डरो मत, एक बार कमजोरी का जैसा फल भुगत चुकी हूँ, उससे जन्म भर के लिए सबक मिल गया है।''[६७]

ऐसा कहकर वह उसके साथ भागने के लिए तैयार हो जाती है। रात को निकलने वाले थे कि वकील साहब ने देर से आने का कारण बता रहे थे-

''आज एक बड़ा पुराना मित्र मिल गया था। उसी से बातें करने में देरी हो गई। बड़ी मुसीबत में था बेचारा। उसकी स्त्री अपने किसी आशिक के साथ भाग

गई।''[६८]

मेरे मन में विचार आया कि मेरी पत्नी भी पढ़ी हुई आधुनिक नारी है लेकिन कभी भी इस प्रकार की सोच रख ही नहीं सकती और यह बात घर आकर अपनी पत्नी रूप को बताता है। पति की इस बात को सुनकर रूप का चेहरा उतर जाता है। पुराने संस्कार उसे अब घर से भागने से रोकते हैं। इस प्रकार संस्कारों से आक्रांत एक आधुनिक नारी की त्रासदी का चित्रण उस कहानी में हुआ है।

सांस्कृतिक मूल्यों के परिवर्तन को पुरानी पीढ़ी नकारती है। एक ओर नयी पीढ़ी का मोह मन को खींचता है दूसरी ओर संस्कारित मन सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना सहन नहीं करता। 'संख्या के पार' के बाबू की स्थिति कुछ ऐसी ही है।

आजी और बाबा की लड़की विधवा थी। वह हक बच्ची की माँ होते हुए भी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर देती है। बच्ची बड़ी होती है जिसका नाम प्रमिला है। लाड़-प्यार से पली प्रमिला को अपनी माँ की करतूत तब तक मालूम नहीं होती, जब तक कि वह पूरा होश संभाल नहीं लेती। एक दिन आजी और बाबा के बीच संवाद हो रहा था, बाबा कहते हैं-

''वह नहीं आ सकती... इस घर में, पाँव भी नहीं रख सकती। सच कहता हूँ, वह आई तो मैं उसकी टांगे तोड़ दूँगा... तुम लाख रोओ, रोते-रोते मर भी जाओ तब भी वह इस घर में घुस नहीं सकती। उसने इस शहर में घुसने की हिम्मत ही कैसे की। तुम कहला दो कि वह शहर छोड़कर चली जाए। मेरी इज्जत-प्रतिष्ठा, सुख-चैन सब मिट्टी में मिला दिया...।''[६९]

इस प्रकार बाबा पुराने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश करते हैं। आजी तो बेटी द्वारा उठाये कदम को स्वीकार कर लेती है लेकिन बाबा के लिए यह स्वीकारना असह्य है। लेकिन अंत में बाबा का अपनी भागी हुई बेटी को चेक देना बदलते मूल्यों को मौन रूप से स्वीकृत करने का परिचायक है।

'दीवार बच्चे और बरसात' कहानी में कस्बाई संस्कारों से ग्रस्त मुहल्ले के

लोगों को किरायेदारी का अपने पति को छोड़कर जाना बड़ा ही अव्यवस्थित कर देता है। पुराने संस्कार इस घटना को सहज रूप से ग्रहण नहीं कर पाता। किरायेदारनी की स्वतंत्रता एक आलोचना का विषय बन जाता है-

"लो,और सुनो, आदमी की इच्छा के मुताबिक चलना सहीद होना हो गया। हृदय है भई। हम तो कहें, फिर तुम मरद होकर जनमी होती। औरत हो तो आदमी के लिए एक बार क्या सौ बार सहीद होना पड़ेगा जो कमावै तुम्हें खिलावै,उसकी इच्छा चलेगी कि तुम्हारी।"[७०]

आधुनिकता एवं वैज्ञानिक प्रगति ने युवापीढ़ी ने सांस्कृतिक मूल्यों का नाश ही कर दिया। 'आते जाते यायावर' कहानी में तो सांस्कृतिक मूल्यों का कोई स्थान ही नहीं है। आज संबंधों की आत्मीयता एवं गहराई का , आज के बदलते परिवेश में कोई स्थान नहीं रहा। यहाँ आकर युवा पीढ़ी ने सारे सांस्कृतिक मूल्यों को नकार दिया। आज मानवीय संवेदना खत्म सी हो गयी। यायावरी व्यक्तित्व वाला नरेन मिताली से प्रेम करने की बात करता है। मिताली तहेदिल से प्रेम करती है। वह उससे शारीरिक संबंध भी जोड़ती है। लेकिन नरेन मिताली से यह कहता है-

"आज तुम्हें एक अँधेरे कुएँ से निकाल कर खुली ऐसी दुनिया में ले आया हूँ। अब जानोगी कि जीना क्या होता है।"[७१]

ऐसा कहकर वह न जाने कहाँ गायब हो जाता है। जब वापस आता है तो वह फिर से मिताली से कहता है-

"खींचकर लाना मेरा काम था, अब इस खुली दुनिया में चलना और अपना रास्ता तलाश करना तुम्हारा काम है।"[७२]

क्योंकि अपने साथ-चलने के लिए उसने एक लिपी-पुती, बड़ी-सी बिंदी लगाने वाली गुडिया जैसी लड़की चुन ली थी। इस प्रकार झूठा प्रेम जताकर मिताली का शारीरिक शोषण कर लेता है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि आज प्रेम में भी सांस्कृतिक मूल्यों में तीव्र ह्रास हुआ है।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं -

१. मन्नू जी के कथा-साहित्य में, 'महाभोज' उपन्यास तथा कुछेक कहानियों में राजनैतिक समस्याओं का आकलन कलात्मक ढंग से हुआ है।

२. राजनीतिक समस्याओं में भ्रष्ट राजनीति का चित्रण, भारतीय राजनीति में नारी की भूमिका, राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति, राजनीति में नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्या, राजनीति में साँठ-गाँठ के कारण पुलिस के हथकंडों की समस्या, पुलिस का राजनीतिकरण, राजनीति में आम जानता का शोषण, राजनीति और न्यायतंत्र की साँठ-गाँठ, दलितों का शोषण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों का समाकलन मन्नू जी के कथासाहित्य में हुआ है।

३. मन्नूजी के कथासाहित्य में राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त शैक्षिक समस्याओं - पीली पत्रकारिता की समस्या, महानगरों में बढ़ रही प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण की समस्या जैसी समस्याओं को भी मन्नू जी अपने कथासाहित्य में कलात्मक दृष्टि से गुंफित किया है।

४. छद्मधर्म के बढ़ते व्यापार के कारण उत्पन्न धार्मिक समस्याओं को भी मन्नू जी ने अपने कथासाहित्य में समुचित स्थान दिया है।

५. इसके अतिरिक्त वर्तमान युग में बढ़ रही अनास्था की समस्या, व्यसनों की समस्या, सांस्कृतिक मूल्यों के गिरावट की समस्या जैसी समस्याओं को भी मन्नू जी ने अपने कथासाहित्य का विषय बनाया है।

६. अंततः यह कहा जा सकता है कि मन्नूजी में सामाजिक दायित्वबोध की भावना है। वह साहित्यकार के सामाजिक दायित्व को उसके सामाजिक कर्त्तव्य को भली-भाँति समझती है। फलतः उनका साहित्य सामाजिक सरोकारों का साहित्य हो जाता है। परंतु यह सब उन्होंने इतने कलात्मक

ढंग से किया है कि उसमें कहीं प्रचार की बू नहीं आती और कुछ भी आरोपित सा नहीं लगता।

*

सन्दर्भ :

१. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ. १४७
२. वही, नायक खलनायक विदूषक, मैं हार गई, पृ. २५
३. वही, हार, पृ. १६२
४. गुलाबराय हाड़े - मन्नू भंडारी का कथासाहित्य, पृ. १७३
५. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ. २४
६. वही, नायक खलनायक विदूषक, मैं हार गई, पृ. २३
७. वही, महाभोज, पृ. ३१
८. वही, पृ. १२६
९. गुलाबराय हाड़े - मन्नूभंडारी का कथा साहित्य, पृ. १७५
१०. वही, पृ. १७६
११. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ. ७
१२. वही, पृ. ७
१३. वही, पृ.१९
१४. वही, पृ. २७-२८
१५. डॉ. शशि जेकब- महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. १७१
१६. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ. ४०
१७. वही, पृ.४०
१८. वही, पृ.३१
१९. वही, पृ.३३

२०. वही, पृ.७
२१. वही, पृ.६६
२२. वही, पृ.६६
२३. वही, पृ.३२
२४. वही, पृ.३२
२५. डॉ. धर्मवीर भारती - अंधा युग, पृ. १०
२६. मन्नू भंडारी - महाभोज,पृ. ३४
२७. वही, पृ.२२
२८. वही, पृ.१६
२९. वही, पृ.२६
३०. वही, पृ.२५
३१. व्यवहारिक हिन्दी- पृ. १०६
३२. मन्नू भंडारी - नायक खलनायक विदूषक - ईसा के घर इंसान, पृ. १०६
३३. वही, पृ.१०६
३४. वही,रानी माँ का चबूतरा, पृ.२११
३५. वही, पृ.२१२
३६. सं. भोलानाथ तिवारी - कवितायन, पृ. ३५
३७. मन्नू भंडारी - स्वामी, पृ. ५४
३८. वही, पृ.५४-५५
३९. वही, पृ.७३
४०. वही, पृ.७९
४१. वही, नायक खलनायक विदूषक, क्षय, पृ.२२९
४२. वही, ईसा के घर इंसान, पृ.१०७
४३. वही, स्वामी, पृ.६०
४४. वही, नायक खलनायक विदूषक, रेत की दीवार, पृ.३८२
४५. वही, पृ.३८२

४६. डॉ. शशी जेकब- महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. ८४
४७. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ. ४३
४८. वही, पृ.८
४९. वही, पृ.३६
५०. वही, पृ.३६
५१. वही, पृ.१७
५२. वही, नायक खलनायक विदूषक,तीसरा हिस्सा, पृ.४५५-४५६
५३. वही, आपका बंटी, पृ.१८३
५४. वही, नायक खलनायक विदूषक, यही सच है , पृ.२६५
५५. वही, पृ.२६५
५६. वही, ऐखाने आकाश नाई, पृ.३९९
५७. वही, कील और कसक, पृ.९१
५८. वही, नशा, पृ.१९१
५९. वही, पृ.१९६
६०. डॉ. शकुन्तला गर्ग, महिला उपन्यासकार : मूल्य चेतना, पृ. ९७
६१. डॉ. रामगोपाल, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. ३४
६२. मन्नू भंडारी -नायक खलनायक विदूषक, ऐखाने आकाश नाई, पृ. ३९९
६३. वही, पृ.६३
६४. वही, अकेली, पृ.१२२
६५. वही, छत बनाने वाले, पृ.३१४
६६. वही, पृ.३१५
६७. वही, एक कमजोर लड़की की कहानी, पृ.८१
६८. वही, पृ.८१
६९. वही, संख्या के पार, पृ.२८९
७०. वही, दीवार बच्चे और बरसात, पृ.८६
७१. वही, आते जाते यायावर, पृ.४१५
७२. वही, पृ.४१५